यहाँ महाभारत के शान्तिपर्व (मोक्षधर्मपर्व) के अध्याय 321 से 327 तक के श्लोकों का केवल हिंदी अनुवाद प्रस्तुत है:

अध्याय 321: व्यासजी का शुकदेवजी को उपदेश

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! पूर्वकाल में व्यासपुत्र शुकदेव को किस प्रकार वैराग्य प्राप्त हुआ था? मैं यह सुनना चाहता हूँ। इस विषय में मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है ।1 ।

कुरुनंदन! इसके सिवा आप मुझे व्यक्त और अव्यक्त तत्त्वों का बुद्धि द्वारा निश्चित किया हुआ स्वरूप बतलाइये तथा अजन्मा भगवान् नारायण का जो चरित्र है, उसे भी सुनाने की कृपा करें ।2 ।

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! पुत्र शुकदेव को साधारण लोगों की भाँति आचरण करते और सर्वथा निर्भय विचरते देख पिता श्रीव्यासजी ने उन्हें सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन कराया और फिर यह उपदेश दिया ।3 ।

व्यासजी ने कहा—बेटा! तुम सदा धर्म का सेवन करते रहो और जितेन्द्रिय होकर कड़ी से कड़ी सर्दी, गर्मी, भूख-प्यास को सहन करते हुए प्राणवायु पर विजय प्राप्त करो ।4 ।

सत्य, सरलता, अक्रोध, दोषदर्शन का अभाव, इन्द्रिय-संयम, तप, अहिंसा और दया आदि धर्मों का विधिपूर्वक पालन करो ।5 ।

सत्य पर डटे रहो तथा सब प्रकार की वक्रता छोड़कर धर्म में अनुराग करो। देवताओं और अतिथियों का सत्कार करके जो अन्न बचे, उसी का प्राणरक्षा के लिये आस्वादन करो ।6 ।

बेटा! यह शरीर जल के फेन की तरह क्षणभंगुर है। इसमें जीव पक्षी की तरह बसा हुआ है और यह प्रियजनों का सहवास भी सदा रहने वाला नहीं है। फिर भी तुम क्यों सोये पड़े हो? ।7 ।

तुम्हारे शत्रु सर्वदा सावधान, जागे हुए, सर्वथा उद्यत और तुम्हारे छिद्रों को देखने में लगे हुए हैं; परंतु तुम अभी बालक हो, इसलिये समझ नहीं रहे हो ।8 ।

तुम्हारी आयु के दिन गिने जा रहे हैं। आयु क्षीण होती जा रही है और जीवन मानो कहीं लिखा जा रहा है (समाप्त हो रहा है)। फिर तुम उठकर भागते क्यों नहीं हो? (शीघ्रतापूर्वक कर्तव्यपालन में लग क्यों नहीं जाते हो?) ।9 ।

अत्यन्त नास्तिक मनुष्य केवल इस लोक के स्वार्थ को चाहते हुए शरीर में मांस और रक्त को बढ़ाने वाली चेष्टा ही करते रहते हैं। पारलौकिक कार्यों की ओर से तो वे सदा सोये ही रहते हैं ।10 ।

जो बुद्धि के व्यामोह में डूबे हुए मनुष्य धर्म से द्वेष करते हैं, वे सदा कुमार्ग से ही चलते हैं। उनकी तो बात ही क्या है, उनके अनुयायियों को भी कष्ट भोगना पड़ता है ।11 ।

इसलिये जो महान् धर्मबल से सम्पन्न महात्मा पुरुष संतुष्ट और श्रुतिपरायण होकर सर्वदा धर्मपथ पर ही आरूढ़ रहते हैं, तुम उन्हीं की सेवा में रहो और उन्हीं से अपना कर्तव्य पूछो ।12 ।

उन धर्मदर्शी विद्वानों का मत जानकर तुम अपनी श्रेष्ठ बुद्धि के द्वारा अपने कुपथगामी मन को काबू में करो । 13 ।

जिसकी केवल वर्तमान सुख पर ही दृष्टि रहती है, उस बुद्धि के द्वारा भावी परिणाम को बहुत दूर जानकर जो निर्भय रहते और सब प्रकार के अभक्ष्य पदार्थों को खाते रहते हैं, वे बुद्धिहीन मनुष्य इस कर्मभूमि के महत्त्व को

नहीं देख पाते हैं ।14 ।

तुम धर्मरूपी सीढ़ी को पाकर धीरे-धीरे उस पर चढ़ते जाओ । अभी तो तुम रेशम के कीड़े की तरह अपने-आपको वासनाओं के जाल से ही लपेटते जा रहे हो, तुम्हें चेत नहीं हो रहा है ।15 ।

जो नास्तिक हो, धर्म की मर्यादा भंग कर रहा हो और किनारे को तोड़-फोड़कर गिरा देने वाले नदी के महान् जल-प्रवाह की भाँति स्थित हो, ऐसे मनुष्य को उखाड़े हुए बाँस की तरह बिना किसी हिचक के त्याग दो ।16 ।

काम, क्रोध, मृत्यु और जिसमें पाँच इन्द्रियरूपी जल भरा हुआ है, ऐसी विषयासक्तिरूपी नदी को तुम सात्त्विकी धृतिरूप नौका का आश्रय ले पार कर लो और इस प्रकार जन्म-मृत्युरूपी दुर्गम संकट से पार हो जाओ ।17 ।

सारा संसार मृत्यु के थपेड़े खाता हुआ वृद्धावस्था से पीड़ित हो रहा है । ये रातें प्राणियों की आयु का अपहरण करके अपने को सफल बनाती हुई बीत रही हैं । तुम धर्मरूपी नौका पर चढ़कर भवसागर से पार हो जाओ । 18 ।

मनुष्य खड़ा हो या सो रहा हो, मृत्यु निरन्तर उसे खोजती फिरती है । जब इस प्रकार तुम अकस्मात् मृत्यु के ग्रास बन जाने वाले हो, तब इस तरह निश्चिन्त एवं शान्त कैसे बैठे हो ? ।19 ।

मनुष्य भोगसामग्रियों के संचय में लगा ही रहता है और उनसे तृप्त भी नहीं होने पाता है कि भेड़ के बच्चे को उठा ले जाने वाली बाघिन की भाँति मौत उसे अपनी दाढ़ में दबाकर चल देती है ।20 ।

यदि तुम्हें इस संसाररूपी अन्धकार में प्रवेश करना है तो हाथ में उस धर्म-बुद्धिमय महान् दीपक को यत्नपूर्वक धारण कर लो, जिसकी शिखा क्रमशः प्रज्वलित हो रही हो ।21 ।

बेटा! जीव अनेक प्रकार के शरीरों में जन्मता-मरता हुआ कभी इस मानव-योनि में आकर ब्राह्मण का शरीर पाता है, अतः तुम ब्राह्मणोचित कर्तव्य का पालन करो ।22 ।

ब्राह्मण का यह शरीर भोग भोगने के लिये नहीं पैदा होता है । यह तो यहाँ क्लेश उठाकर तपस्या करने और मृत्यु के पश्चात् अनुपम सुख भोगने के लिये रचा गया है ।23 ।

बहुत समय तक बड़ी भारी तपस्या करने से ब्राह्मण का शरीर मिलता है । उसे पाकर विषयानुराग में फँसकर बरबाद नहीं करना चाहिये । अतः यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो कुशलप्रद कर्म में संलग्न हो सदा स्वाध्याय, तपस्या और इन्द्रियसंयम में पूर्णतः तत्पर रहने का प्रयत्न करो ।24 ।

मनुष्यों का आयुरूप अश्व बड़े वेग से दौड़ा जा रहा है । इसका स्वभाव अव्यक्त है । कला-काष्ठा आदि इसके शरीर हैं । इसका स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म है । क्षण, त्रुटि (चुटकी) और निमेष आदि इसके रोम हैं । ऋतुएँ मुख हैं । समान बलवाले शुक्ल और कृष्णपक्ष नेत्र हैं तथा महीने इसके विभिन्न अंग हैं । वह भयंकर वेगशाली अश्व यहाँ की किसी वस्तु की अपेक्षा न रखकर निरन्तर अविराम गति से वेगपूर्वक भागा जा रहा है । उसे देखकर यदि तुम्हारी ज्ञानदृष्टि दूसरे के द्वारा चलाने पर चलने वाली नहीं है; तो तुम्हारा मन धर्म में ही लगना चाहिये । तुम दूसरे धर्मात्माओं पर भी दृष्टि डालो ।25-26 ।

जो लोग यहाँ धर्म से विचलित हो स्वेच्छाचार में लगे हुए हैं, दूसरों को बुरा-भला कहते हुए सदा अनिष्टकारी अशुभ कर्मों में ही लगे हुए हैं, वे मरने के बाद यातनादेह पाकर अपने अनेक पापकर्मों के कारण अत्यन्त क्लेश भोगते हैं ।27 ।

जो राजा सर्वदा धर्मपरायण रहकर उत्तम और अधम प्रजा का यथायोग्य विचारपूर्वक पालन करता है, वह पुण्यात्माओं के लोकों को प्राप्त होता है। यदि वह स्वयं भी नाना प्रकार के शुभ कर्मों का आचरण करता है तो उसके फलस्वरूप उसे अप्राप्त एवं निर्दोष सुख प्राप्त होता है।28।

परंतु जो गुरुजनों की आज्ञा का उल्लंघन करते हैं, उनके मरण के पश्चात् नरक में स्थित भयानक शरीरवाले कुत्ते, लौहमुख पक्षी, कौए-गीध आदि पक्षियों के समुदाय तथा रक्त पीने वाले कीट उनके यातना-शरीर पर आक्रमण करके उसे नोचते और काटते हैं।29।

जो मनुष्य मनचाही करने के कारण स्वायम्भुवमनु की बाँधी हुई धर्म की दस प्रकार की मर्यादाओं को तोड़ता है, वह पापात्मा पितृलोक के असिपत्रवन में जाकर वहाँ अत्यन्त दुःख भोगता रहता है।30।

जो पुरुष अत्यन्त लोभी, असत्य से प्रेम करने वाला और सर्वदा कपटभरी बातें बनाने वाला और ठगाई में रत है तथा जो तरह-तरह के साधनों से दूसरों को दुःख देता है, वह पापात्मा घोर नरक में पड़कर अत्यन्त दुःख भोगता है।31।

उसे अत्यन्त उष्ण महानदी वैतरणी में गोता लगाना पड़ता है। असिपत्रवन में उसका अंग-अंग छिन्न-भिन्न हो जाता है और परशुवन में उसे शयन करना पड़ता है। इस प्रकार महानरक में पड़कर वह अत्यन्त आतुर हो उठता है और विवश होकर उसी में निवास करता है।32।

तुम ब्रह्मलोक आदि बड़े-बड़े स्थानों की बातें तो बनाते हो, परंतु परमपद पर तुम्हारी दृष्टि नहीं है। भविष्य में जो मृत्यु की परिचारिका वृद्धावस्था आने वाली है, उसका तुम्हें पता ही नहीं है।33।

वत्स! चुपचाप क्यों बैठे हो? जल्दी से आगे बढ़ो। तुम्हारे ऊपर हृदय को अत्यन्त मथ डालने वाला, भयंकर एवं महान् भय उठ खड़ा हुआ है; अतः परमानन्द की प्राप्तिके लिये प्रयत्न करो।34।

तुम्हें मरने पर यमराज की आज्ञा से भयानक यमदूतों द्वारा उनके सामने उपस्थित किया जाय, इसके पहले ही सरलतारूप धर्म के सम्पादन के लिये प्रयत्न करो।35।

यमराज सबके स्वामी हैं। वे किसी का दुःख-दर्द नहीं समझते हैं। वे मूल और बन्धु-बान्धवों सहित तुम्हारे प्राण हर लेंगे। उन्हें रोकने वाला कोई नहीं है। वह समय आने के पहले ही तुम अपनी रक्षा के लिये प्रबन्ध कर लो। 36।

जिस समय यमराज के आगे-आगे चलने वाला प्रचण्ड कालरूपी पवन चल पड़ेगा, उस समय वह अकेले तुम्हीं को वहाँ ले जायगा; अतः तुम पहले से ही परलोक में सुख देने वाले धर्म का आचरण करो।37।

पूर्वजन्म में तुम्हारे सामने जो प्राणनाशक पवन चल रहा था, आज वह कहाँ है? अब भी जब मृत्युरूप महान् भय उपस्थित होगा, तब तुम्हें सम्पूर्ण दिशाएँ घूमती दिखायी देंगी; अतः पहले से ही सावधान हो जाओ।38।

बेटा! जब तुम इस शरीर को छोड़कर चलने लगोगे, उस समय व्याकुलता के कारण तुम्हारी श्रवणशक्ति भी नष्ट हो जायगी। इसलिये तुम सुदृढ़ समाधि प्राप्त कर लो।39।

तुम पहले असावधानतावश जो अनुचित रूप से शुभाशुभ कर्म कर चुके हो, उसे स्मरण करके उनके फलभोग से संतप्त होने के पहले ही अपने लिये केवल ज्ञान का भण्डार भर लो।40।

देखो, बल, अंग और रूप का विनाश करने वाली वृद्धावस्था एक दिन तुम्हारे शरीर को जर्जर कर डालेगी, उसके पहले ही तुम अपने लिये ज्ञान का भण्डार भर लो।41।

रोग जिसका सारथि है, वह काल हठात् तुम्हारे शरीर को विदीर्ण कर डालेगा, इसलिये इस जीवन का नाश होने से पूर्व ही तुम महान् तप का अनुष्ठान कर लो ।42 ।

इस मानव-शरीर में रहने वाले काम-क्रोध आदि भयंकर व्याघ्र तुम पर चारों ओर से आक्रमण कर रहे हैं, इसलिये पहले से ही तुम पुण्यसंचय के लिये प्रयत्न करो ।43 ।

मरने के समय तुम्हें पहले घोर अन्धकार दिखलायी देगा । फिर पर्वत के शिखर पर सुनहरे वृक्ष दृष्टिगोचर होंगे । वह समय आने से पहले ही अपने कल्याण के लिये तुम शीघ्र प्रयत्न करो ।44 ।

इस संसार में दुष्ट पुरुषों के संग तथा ऊपर से मित्रभाव एवं भीतर से शत्रुता रखने वाले लोग दर्शनमात्र से तुम्हें कर्तव्यपथ से विचलित कर देंगे, इसलिये तुम पहले से ही परम उत्तम पुण्यसंचय के लिये प्रयत्न करो ।45 ।

जिस धन को न तो राजा से भय है और न चोर से ही तथा जो मर जाने पर भी जीव का साथ नहीं छोड़ता है, उस धर्मरूपी धन का उपार्जन करो ।46 ।

अपने कर्मों के अनुसार प्राप्त हुए उस धन को परलोक में परस्पर बाँटना नहीं पड़ता है । वहाँ तो जो जिसकी निजी सम्पत्ति है, उसे ही वह भोगता है ।47 ।

बेटा! जिससे परलोक में भी जीवन-निर्वाह हो सकता है तथा जो अविनाशी और अटल धन है, उसी का दान करो एवं उसी का स्वयं भी उपार्जन करते रहो ।48 ।

बेटा! घर पर आये हुए किसी समादरणीय अतिथि के लिये जितनी देर में यावक (घृत और खाँड़ मिलाकर तैयार किया हुआ जौ के आटे का पूआ) पकाया जाता है, उसके पकने से भी पहले तुम्हारी मृत्यु हो सकती है; अतः तुम ज्ञानरूपी धन के उपार्जन के लिये शीघ्रता करो ।49 ।

जीव जब अकेला ही परलोक के पथ पर प्रस्थान करता है, उस संकट के समय माता, पुत्र, भाई-बन्धु तथा अन्यान्य प्रशंसित प्रियजन भी उसके साथ नहीं जाते हैं ।50 ।

पुत्र! परलोक में जाते समय अपना पहले का किया हुआ जो शुभाशुभ कर्म होता है, केवल वही साथ रहता है । 51 ।

मनुष्य के द्वारा अच्छे-बुरे सभी तरह के कर्म करके जो सुवर्ण और रत्नों के ढेर इकट्ठे किये जाते हैं, वे भी उस मनुष्य के शरीर का नाश होने पर उसके किसी काम नहीं आते हैं (क्योंकि वे सब यहीं रह जाते हैं) ।52 ।

परलोक की यात्रा करते समय तुम्हारे किये और न किये हुए कर्म का साक्षी आत्मा के समान मनुष्यों में दूसरा कोई नहीं है ।53 ।

परलोक में जाते समय इस मनुष्य-शरीर का अभाव हो जाता है अर्थात् यह यहीं छूट जाता है । जीव सूक्ष्म शरीर से लोकान्तर में प्रवेश करके अपने बुद्धिरूपी नेत्र से वहाँ सब कुछ देखता है ।54 ।

इस लोक में अग्नि, वायु और सूर्य - ये तीन देवता जीव के शरीर का आश्रय करके रहते हैं । वे ही उसके धर्माचरण को देखने वाले हैं और वे ही परलोक में उसके साक्षी होते हैं ।55 ।

दिन सब पदार्थों को प्रकाशित करता है और रात्रि उन्हें छिपा लेती है । ये सर्वत्र व्याप्त हैं और सभी वस्तुओं का स्पर्श करते हैं, अतः तुम इनकी वेला में सर्वदा अपने धर्म का ही पालन करो ।56 ।

परलोक के मार्ग पर बहुत-से लुटेरे और बटमार रहते हैं तथा विकराल एवं भयंकर डाँस एवं मक्खियाँ होती हैं । वहाँ केवल अपना किया हुआ कर्म ही साथ जाता है; अतः तुम्हें अपने सत्कर्म की ही रक्षा करनी चाहिये ।57 ।

वहाँ अपने कर्म के अनुसार जो फल प्राप्त होता है, उसका किसी के साथ बँटवारा नहीं होता। वहाँ तो अपने किये हुए कर्मों का ही फल भोगना होता है ।58 ।

जैसे महर्षियों के साथ झुंड-करी-झुंड अप्सराएँ होती हैं और वे सब पुण्य के फलस्वरूप सुख भोगते हैं, उसी प्रकार वहाँ पुण्यात्मा लोग विमानों पर चढ़कर इच्छानुसार विचरते और पुण्यकर्मजनित सुख भोगते हैं ।59 ।

निष्पाप पुण्यात्मा पुरुषों द्वारा इस लोक में जो शुभ कर्म सम्पादित होता है, जन्मान्तर में विशुद्ध योनि में जन्म लेकर उसका वैसा ही फल पाते हैं ।60 ।

गृहस्थ-धर्म की मर्यादा का पालन करने वाले लोग प्रजापति, बृहस्पति अथवा इन्द्र के लोक में उत्तम गति को प्राप्त होते हैं ।61 ।

वत्स ! मैं तुम्हारे सामने हजारों तथा उससे भी अधिक बार यह बात जोर देकर कह सकता हूँ कि सर्वशक्तिमान् तथा सबको पवित्र करने वाले धर्म ने, जिसकी बुद्धि पर मोह नहीं छा गया है, उस धर्मात्मा पुरुष को सदा ही पुण्यलोक में पहुँचाया है ।62 ।

बेटा! तुम्हारी आयु के चौबीस वर्ष बीत गये। अब निश्चय ही तुम पचीस साल के हो गये; अतः धर्म का संचय करो। तुम्हारी सारी आयु यों ही बीती जा रही है ।63 ।

देखो, तुम्हारा जो प्रमाद है, उसमें निवास करने वाला काल तुम्हारी इन्द्रियों के समुदाय को मुखरहित (भोगशक्ति से हीन) कर रहा है। इनके असमर्थ हो जाने के पहले ही तुम खड़े हो जाओ और अपने शरीर से धर्म का पालन करने के लिये जल्दी करो ।64 ।

जिस समय तुम शरीर छोड़कर परलोक की राह लोगे, उस समय तुम्हीं पीछे रहोगे और तुम्हीं आगे चलोगे - तुम्हारे सिवा दूसरा कोई वहाँ आगे-पीछे चलने वाला न होगा। ऐसी दशामें किसी अपने या पराये व्यक्ति से तुम्हारा क्या प्रयोजन है? ।65 ।

भय उपस्थित होने पर अकेले यात्रा करने वाले सत्पुरुषों के लिये परलोक में जो हितकर होता है, उस धर्म या ज्ञान की निधिको शुद्धभाव से संचित करो ।66 ।

सर्वसमर्थ काल किसी के प्रति भी स्नेह नहीं करता। वह कूल और मूल अर्थात् आदि-अन्त सहित समस्त बन्धु-बान्धवों को हर ले जाता है। उसको रोकने वाले कोई नहीं हैं; इसलिये तुम धर्म का संचय करो ।67 ।

बेटा! मैंने अपने शास्त्रज्ञान और अनुमान के द्वारा इस समय तुम्हें जिस ज्ञान का उपदेश किया है, तुम उसी के अनुसार आचरण करो ।68 ।

जो पुरुष अपने सत्कर्मों द्वारा धर्म को धारण करता है और जिस किसी को भी निष्कामभाव से दान देता है, वह अकेला ही मोहरहित बुद्धि से प्राप्त होने वाले गुणों से संयुक्त होता है ।69 ।

जो समस्त शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करता और तदनुसार शुभ कर्मों के अनुष्ठान में लगा रहता है, उसी के लिये इस ज्ञान का उपदेश किया गया है; क्योंकि कृतज्ञ पुरुष को जो भी उपदेश दिया जाता है, वही सफल होता है। 70 ।

मनुष्य जब गाँव में रहकर वहीं के पदार्थों से प्रेम करने लगता है, वह उसे बाँधने वाली रस्सी ही है। पुण्यात्मा लोग इसे काटकर उत्तम लोकों में चले जाते हैं, परंतु पापात्मा पुरुष इसे नहीं काट पाते हैं ।71 ।

बेटा! जब तुम्हें एक दिन मरना ही है, तब धन, बन्धु और पुत्र आदि से तुम्हें क्या लेना है; अतः तुम हृदयरूपी गुफा में छिपे हुए आत्मतत्त्व का अनुसंधान करो । सोचो तो सही; आज तुम्हारे सारे पूर्वज - पितामह कहाँ चले गये? ।72 ।

जो काम कल करना हो, उसे आज ही कर लेना चाहिये और जो दोपहर-बाद करना हो, उसे पहले ही पहर में पूरा कर डालना चाहिये; क्योंकि मौत यह नहीं देखती कि इसका काम पूरा हुआ है या नहीं ।73 ।

मृत्यु के बाद भाई-बन्धु, कुटुम्बी और सुहृद् श्मशान भूमि तक पीछे-पीछे जाते हैं और मृत पुरुष के शरीर को चिता की आग में डालकर लौट आते हैं ।74 ।

अतः तुम परमात्मतत्त्व की प्राप्ति के इच्छुक हो आलस्य छोड़कर नास्तिक, निर्दय तथा पापबुद्धि मनुष्यों को बिना किसी हिचक के बायें कर दो-कभी भूलकर भी उनका साथ न दो ।75 ।

इस प्रकार जब सारा संसार काल से आहत और पीड़ित हो रहा है, तब तुम महान् धैर्य का आश्रय ले सम्पूर्ण हृदय से धर्म का आचरण करो ।76 ।

जो मनुष्य परमात्मा के साक्षात्कार के इस साधन को भलीभाँति जानता है, वह इस लोक में स्वधर्म का ठीक-ठीक पालन करके परलोक में सुख भोगता है ।77 ।

जो ऐसा जानते हैं कि शरीर का नाश हो जाने पर भी अपनी मृत्यु नहीं होती है और शिष्ट पुरुषों द्वारा पालित धर्म-मार्ग पर चलने वालों का कभी नाश नहीं होता है, वे ही बुद्धिमान् हैं । जो इन सब बातों को सोच-विचारकर धर्म को बढ़ाता रहता है, वह विद्वान् है । जो धर्म से गिर जाता है, वही मोहग्रस्त अथवा मूढ है ।78 ।

कर्म के मार्ग पर प्रयोग (आचरण) में लाये गये जो अपने शुभाशुभ कर्म हैं, उनका फल कर्ता को उस कर्म के अनुसार प्राप्त होता है । नीच कर्म करने वाला नरक में पड़ता है और धर्माचरण में पारङ्गत पुरुष स्वर्गलोक को जाता है ।79 ।

यह दुर्लभ मानव-शरीर स्वर्गलोक में पहुँचने के लिये सीढ़ी के समान है । इसे पाकर अपने-आपको इस प्रकार धर्म में एकाग्र करे, जिससे फिर उसे स्वर्ग से नीचे न गिरना पड़े ।80 ।

स्वर्गलोक के मार्ग का अनुसरण करने वाली जिसकी बुद्धि धर्म का कभी उल्लंघन नहीं करती, उसको पुण्यात्मा कहते हैं । वह पुत्रों और बन्धु-बान्धवों के लिये कदापि शोचनीय नहीं है ।81 ।

जिसकी बुद्धि दूषित न होकर दृढ़ निश्चय का सहारा लेती है, उसने स्वर्ग में अपने लिये स्थान बना लिया है । उसे नरक का महान् भय नहीं प्राप्त होता ।82 ।

जो लोग तपोवनों में पैदा हुए और वहीं मृत्यु को प्राप्त हो गये, उन्हें थोड़े-से ही धर्म की प्राप्ति होती है; क्योंकि वे काम-भोगों को जानते ही नहीं थे (अतः उन्हें त्यागने के लिये उनको कष्ट सहन नहीं करना पड़ता) ।83 ।

जो भोगों का परित्याग करके तपोवन में जाकर शरीर से तपस्या करता है, उसके लिये कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो प्राप्त न हो । वही फल मुझे अधिक जान पड़ता है ।84 ।

हजारों माता-पिता और सैकड़ों स्त्री-पुत्र पहले जन्मों में हो चुके हैं और भविष्य में होंगे । वे हममें से किसके हैं और हम उनमें से किसके हैं? ।85 ।

मैं अकेला हूँ । न तो दूसरा कोई मेरा है और न मैं दूसरे किसी का हूँ । मैं ऐसे किसी पुरुष को नहीं देखता, जिसका मैं होऊँ तथा ऐसा भी कोई नहीं दिखायी देता, जो मेरा हो ।86 ।

न उनका तुम कुछ कर सकते हो और न वे तुम्हारे किसी काम आ सकते हैं। वे अपने कर्मों के साथ चले गये और तुम भी चले जाओगे।87।

इस संसार में जो धनवान् हैं, उन्हीं के स्वजन उनके साथ स्वजनोचित बर्ताव करते हैं; दरिद्रों के स्वजन तो उनके जीते-जी ही उन्हें छोड़कर उनकी आँख से ओझल हो जाते हैं।88।

मनुष्य अपनी स्त्री के लिये अशुभ कर्म का संचय करता है, फिर उसके फलरूप में इहलोक और परलोक में भी कष्ट उठाता है।89।

मनुष्य अपने-अपने कर्मों के अनुसार ही इस जीव-जगत् को छिन्न-भिन्न हुआ देखता है, अतः बेटा! मैंने जो कुछ कहा है, वह सब काम में लाओ।90।

इहलोक कर्मभूमि है-ऐसा समझकर इसकी ओर देखते हुए दिव्य लोकों की इच्छा रखने वाले पुरुष को शुभ कर्मों का ही आचरण करना चाहिये।91।

यह कालरूपी रसोइया बलपूर्वक सब जीवों को पका रहा है। मास और ऋतु नामक करछुल से वह जीवों को उलटता-पलटता रहता है। सूर्य उसके लिये आग का काम देते हैं और कर्मफल के साक्षी रात और दिन उसके लिये ईंधन बने हुए हैं।92।

उस धन से क्या लाभ, जिसे मनुष्य न तो किसी को दे सकता और न अपने उपभोग में ही ला सकता है? उस बल से क्या लाभ, जिससे शत्रुओं को बाधित न किया जा सके? उस शास्त्रज्ञान से क्या लाभ, जिसके द्वारा मनुष्य धर्माचरण न कर सके? और उस जीवात्मा से क्या लाभ, जो न तो जितेन्द्रिय है और न मन को ही वश में रख सकता है?।93।

भीष्मजी कहते हैं- राजन्! व्यासजी के कहे हुए ये हितकर वचन सुनकर शुकदेवजी अपने पिता को छोड़कर मोक्षतत्त्व के उपदेशक गुरु के पास चले गये।94।

(इस प्रकार श्रीमहाभारत शान्तिपर्व के अन्तर्गत मोक्षधर्मपर्व में पावकाध्ययन नामक तीन सौ इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ।)

अध्याय 322: शुभाशुभ कर्मों का परिणाम

युधिष्ठिर ने कहा-पितामह! यदि दान, यज्ञ, तप अथवा गुरु-शुश्रूषा करने से कोई फल मिलता है तो वह मुझे बताइये।1।

भीष्मजी ने कहा- राजन्! जब बुद्धि काम-क्रोध आदि अनर्थों से युक्त हो जाती है, तब उससे प्रेरित हुए मनुष्य का मन पाप में प्रवृत्त होने लगता है। फिर वह मनुष्य दोषयुक्त कर्म करके महान् क्लेश में पड़ जाता है।2।

पापकर्म करने वाले दरिद्र मानव दुर्भिक्ष से दुर्भिक्ष को, क्लेश से क्लेश को तथा भय से भय को पाते हुए मरे हुओं से भी अधिक मृतकतुल्य हो जाते हैं।3।

जो श्रद्धालु, जितेन्द्रिय, धनसम्पन्न तथा शुभकर्म-परायण होते हैं, वे उत्सव से अधिक उत्सव को, स्वर्ग से अधिक स्वर्ग को तथा सुख से अधिक सुख को पाते हैं।4।

नास्तिक मनुष्यों के हाथ में हथकड़ी डालकर राजा उन्हें राज्य से दूर निकाल देता है और वे उन जंगलों में चले जाते हैं, जो मतवाले हाथियों के कारण दुर्गम तथा सर्प और चोर आदि के भय से भरे हुए होते हैं। इससे बढ़कर उन्हें और क्या दण्ड मिल सकता है?।5।

जिन्हें देवपूजा और अतिथि सत्कार प्रिय है, जो उदार हैं तथा श्रेष्ठ पुरुष जिन्हें अच्छे लगते हैं, वे पुण्यात्मा मनुष्य अपने दाहिने हाथ के समान मंगलकारी एवं मन को वश में रखने वाले योगियों को ही प्राप्त होने योग्य मार्ग पर आरूढ़ होते हैं ।6 ।

जिनका उद्देश्य धर्मपालन नहीं है, ऐसे मनुष्य मानव-समाज के भीतर वैसे ही समझे जाते हैं, जैसे धानों में थोथा धान और पक्षियों में सड़ा हुआ अंडा ।7 ।

जिस-जिस मनुष्य ने जैसा कर्म किया है, वह उसके पीछे लगा रहता है । यदि कर्ता पुरुष शीघ्रतापूर्वक दौड़ता है तो वह भी उतनी ही तेजी के साथ उसके पीछे जाता है । जब वह सोता है, तब उसका कर्मफल भी उसी के साथ सो जाता है । जब वह खड़ा होता है, तब वह भी उसके पास ही खड़ा रहता है और जब मनुष्य चलता है, तब वह भी उसके पीछे-पीछे चलने लगता है । इतना ही नहीं, कोई कार्य करते समय भी कर्म-संस्कार उसका साथ नहीं छोड़ता । सदा छाया के समान पीछे लगा रहता है ।8-9 ।

जिस-जिस मनुष्य ने अपने-अपने पूर्वजन्मों में जैसे-जैसे कर्म किये हैं, वह अपने ही किये हुए उन कर्मों का फल सदा अकेला ही भोगता है ।10 ।

अपने-अपने कर्म का फल एक धरोहर के समान है, वह शास्त्रविधान के अनुसार सुरक्षित रहता है । उपयुक्त अवसर आने पर यह काल इस प्राणिसमुदाय को कर्मानुसार खींच ले जाता है ।11 ।

जैसे फूल और फल किसी की प्रेरणा के बिना ही अपने समय पर वृक्षों में लग जाते हैं, उसी प्रकार पहले के किये हुए कर्म भी अपने फलभोग के समय का उल्लंघन नहीं करते हैं ।12 ।

सम्मान-अपमान, लाभ-हानि तथा उन्नति-अवनति - ये पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार पग-पग पर प्राप्त होते हैं और प्रारब्धभोग के पश्चात् पुनः निवृत्त हो जाते हैं ।13 ।

दुःख अपने ही किये हुए कर्मों का फल है और सुख भी अपने ही पूर्वकृत कर्मों का परिणाम है । जीव माता की गर्भशय्या में आते ही पूर्व शरीर द्वारा उपार्जित सुख-दुःख का उपभोग करने लगता है ।14 ।

कोई बालक हो, तरुण हो या बूढ़ा हो, वह जो भी शुभाशुभ कर्म करता है, जन्म-जन्मान्तर में उसी अवस्था में उस-उस कर्म का फल भोगता है ।15 ।

जैसे बछड़ा हजारों गौओं में से अपनी माँ को पहचानकर उसे पा लेता है, वैसे ही पहले का किया हुआ कर्म भी अपने कर्ता के पास पहुँच जाता है ।16 ।

जैसे मलिन हुआ वस्त्र पीछे जल से धोने पर शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार जो उपवासपूर्वक तपस्या करते हैं, (उनका अन्तःकरण शुद्ध होकर) उन्हें कभी समाप्त न होने वाला महान् सुख मिलता है ।17 ।

महामते ! दीर्घकाल तक की हुई तपस्या से तथा धर्माचरण द्वारा जिनके सारे पाप धुल गये हैं, उनके सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं ।18 ।

जैसे आकाश में पक्षियों के और जल में मछलियों के चरण-चिह्न दिखायी नहीं देते, उसी प्रकार पुण्यात्मा ज्ञानियों की भी गति का पता नहीं चलता ।19 ।

दूसरों को उलाहना देने तथा लोगों के अन्यान्य अपराधों की चर्चा करने से कोई प्रयोजन नहीं है । जो सुन्दर, अनुकूल और अपने लिये हितकर जान पड़े, वही कर्म करना चाहिये ।20 ।

(इस प्रकार श्रीमहाभारत शान्तिपर्व के अन्तर्गत मोक्षधर्मपर्व में धर्ममूलिक नाम का तीन सौ बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ।)

अध्याय 323: शुकदेवजी की उत्पत्ति और शिव-वरदान

युधिष्ठिर ने कहा-पितामह ! व्यासजी के यहाँ महातपस्वी और धर्मात्मा शुकदेवजी का जन्म कैसे हुआ? तथा उन्होंने परम सिद्धि कैसे प्राप्त की? यह मुझे बताइये ।1 ।

तपस्या के धनी व्यासजी ने किस स्त्री के गर्भ से शुकदेवजी को उत्पन्न किया? हमें उन महात्मा शुकदेवजी की माता का नाम नहीं मालूम है और हम उनके श्रेष्ठ जन्म का वृत्तान्त भी नहीं जानते हैं ।2 ।

शुकदेवजी अभी बालक थे तो भी सूक्ष्मज्ञान में उनकी बुद्धि कैसे लगी? इस संसार में उनके सिवा दूसरे किसी की ऐसी बुद्धि नहीं देखी गयी ।3 ।

महामते ! मैं इस प्रसंग को विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ। आपका यह अमृत के समान उत्तम एवं मधुर प्रवचन सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है ।4 ।

पितामह ! आप मुझे शुकदेवजी का माहात्म्य, आत्मयोग और विज्ञान यथार्थ रीति से क्रमशः बताइये ।5 ।

भीष्मजी ने कहा- राजन् ! कोई अधिक वर्षों की अवस्था हो जाने से, बाल पक जाने से, अधिक धन होने से तथा भाई-बन्धुओं की संख्या बढ़ जाने से भी बड़ा नहीं होता। ऋषियों ने यह नियम बनाया है कि हमलोगों में से जो वेदों का प्रवचन कर सकेगा, वही महान् माना जायगा ।6 ।

पाण्डुनन्दन ! तुम मुझसे जिसके विषय में पूछ रहे हो, उस सबकी जड़ तपस्या है। इन्द्रियों का संयम करने से ही तपस्या की सिद्धि होती है, अन्यथा नहीं ।7 ।

इसमें संदेह नहीं कि मनुष्य इन्द्रियों की विषयासक्ति के कारण ही दोष को प्राप्त होता है और उन्हीं इन्द्रियों को काबू में कर लेने पर वह सिद्धि का भागी होता है ।8 ।

तात! सहस्रों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञों का जो फल है, वह योग की सोलहवीं कला के फल की भी समानता नहीं कर सकता ।9 ।

राजन्! मैं तुम्हें शुकदेवजी का जन्म-वृत्तान्त, योगफल तथा अजितात्मा पुरुषों की समझ में न आने वाली उनकी उत्कृष्ट गति बता रहा हूँ ।10 ।

कहते हैं, पूर्वकाल में कनेर के वनों से सुशोभित मेरुपर्वत के शिखर पर भगवान् शंकर भयानक भूतगणों को साथ ले विहार करते थे ।11 ।

वहीं गिरिराजकुमारी उमादेवी भी उनके साथ ही निवास करती थीं। उन्हीं दिनों श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास उस पर्वत पर दिव्य तपस्या कर रहे थे ।12 ।

कुरुश्रेष्ठ ! योगधर्मपरायण व्यास योग के द्वारा अपने मन को परमात्मा में लगाकर धारणापूर्वक तप का अनुष्ठान करते थे। उनके तप का उद्देश्य था पुत्र की प्राप्ति ।13 ।

उन्होंने यह संकल्प लेकर कि मुझे अग्नि, भूमि, जल, वायु अथवा आकाश के समान धैर्यशाली पुत्र प्राप्त हो, तपस्या आरम्भ की थी ।14 ।

उक्त संकल्प लेकर योग के द्वारा उत्तम तपस्या में लगे हुए वेदव्यासजी ने अजितात्मा पुरुषों के लिये दुर्लभ देवेश्वर महादेवजी से वर-प्रार्थना की ।15 ।

शक्तिशाली व्यासजी सौ वर्षों तक केवल वायुभक्षण करते हुए अनेक रूपधारी उमापति महादेवजी की आराधना में लगे रहे ।16 ।

वहाँ सम्पूर्ण ब्रह्मर्षि, सभी राजर्षि, लोकपाल, बहुत-से अनुचरों के सहित साध्य, आदित्य, रुद्र, सूर्य, चन्द्रमा, वसुगण, मरुद्गण, समुद्र, सरिताएँ, दोनों अश्विनीकुमार, देवता, गन्धर्व, नारद, पर्वत, गन्धर्वराज विश्वावसु, सिद्ध तथा अप्सराएँ भी लोकेश्वर महादेवजी की आराधना करती थीं ।17-19 ।

वहाँ महान् रुद्रदेव कनेर पुष्पों की मनोहर माला धारण किये चाँदनीसहित चन्द्रमा के समान शोभा पाते थे । देवताओं तथा देवर्षियों से भरे हुए उस दिव्य रमणीय वन में पुत्र-प्राप्ति के लिये परम योग का आश्रय ले मुनिवर व्यास तपस्या में प्रवृत्त थे और उससे विचलित नहीं होते थे ।20-21 ।

ऐसा कठोर तप करने पर भी न तो उनके प्राण नष्ट हुए और न उन्हें थकान ही हुई । यह तीनों लोकों के लिये अद्भुत-सी बात हुई ।22 ।

योगयुक्त हुए अमित तेजस्वी व्यासजी की जटाएँ उनके तेज से आग की लपटों के समान प्रज्वलित दिखायी देती थीं ।23 ।

मुझे तो यह वृत्तान्त भगवान् मार्कण्डेयजी ने सुनाया था । वे मुझे सदा ही देवताओं के चरित्र सुनाया करते थे ।24 ।

तात! उसी तपस्या से उद्दीप्त हुई महात्मा व्यासजी की ये जटाएँ आज भी अग्नि के समान प्रकाशित हो रही हैं ।25 ।

भारत ! उनकी ऐसी तपस्या और भक्ति देखकर महादेवजी बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने मन-ही-मन उन्हें अभीष्ट वर देने का विचार किया ।26 ।

भगवान् शिव व्यासजी के सामने आये और हँसते हुए-से बोले- 'द्वैपायन! तुम जैसा चाहते हो, वैसा ही पुत्र तुम्हें प्राप्त होगा ।27 ।

'जैसे अग्नि, जैसे वायु, जैसे पृथ्वी, जैसे जल और जैसे आकाश शुद्ध है, तुम्हारा पुत्र भी वैसा ही शुद्ध एवं महान् होगा ।28 ।

'वह भगवद्भाव में रँगा होगा, भगवान् में ही उसकी बुद्धि होगी, भगवान् में ही उसका मन लगा रहेगा और एकमात्र भगवान् को ही वह अपना आश्रय समझेगा । उसके तेज से तीनों लोक व्याप्त हो जायँगे और तुम्हारा वह पुत्र महान् यश प्राप्त करेगा' ।29 ।

(इस प्रकार श्रीमहाभारत शान्तिपर्व के अन्तर्गत मोक्षधर्मपर्व में शुकदेव की उत्पत्तिविषयक तीन सौ तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ।)

अध्याय 324: शुकदेवजी का जन्म और संस्कार

भीष्मजी कहते हैं- राजन् ! महादेवजी से उत्तम वर पाकर एक दिन सत्यवतीनन्दन व्यासजी अग्नि प्रकट करने की इच्छा से दो अरणी काष्ठ लेकर उनका मन्थन करने लगे ।1 ।

नरेश्वर ! इसी समय उन भगवान् महर्षि व्यास ने वहाँ आयी हुई घृताची नामक अप्सरा को देखा, जो अपने तेज से परम मनोहर रूप धारण किये हुए थी ।2 ।

युधिष्ठिर ! उस वन में उस अप्सरा को देखकर ऋषि भगवान् व्यास सहसा काम से मोहित हो गये। महाराज ! उस समय व्यासजी का हृदय काम से व्याकुल हुआ देख घृताची अप्सरा शुकी होकर उनके पास आयी।3-4।
उस अप्सरा को दूसरे रूप से छिपी हुई देख उनके सम्पूर्ण शरीर में कामवेदना व्याप्त हो गयी।5।
मुनिवर व्यास महान् धैर्य के साथ अपने कामवेग को रोकने लगे; परंतु अप्सरा की ओर गये हुए मन को रोकने में वे किसी तरह समर्थ न हो सके।6।
होसहार होकर ही रहती है; इसलिये व्यासजी घृताची के रूप से आकृष्ट हो गये। अग्नि प्रकट करने की इच्छा से अपने कामवेग को यत्नपूर्वक रोकते हुए महर्षि व्यास का वीर्य सहसा उस अरणीकाष्ठ पर ही गिर पड़ा।7।
नरेश्वर ! उस समय भी द्विजश्रेष्ठ ब्रह्मर्षि व्यास निःशंक मन से दोनों अरणियों के मन्थन में ही लगे रहे। उसी समय अरणी से शुकदेवजी प्रकट हो गये।8।
अरणी के साथ-साथ शुक्र का भी मन्थन होने से महातपस्वी तथा महायोगी परम ऋषि शुकदेवजी का जन्म हो गया। वे अरणी के ही गर्भ से प्रकट हुए।9।
जैसे यज्ञ में हविष्य का वहन करने वाली प्रज्वलित अग्नि प्रकाशित होती है, वैसे ही रूप से शुकदेवजी प्रकट हुए थे। वे अपने तेज से मानो जाज्वल्यमान हो रहे थे।10।
कुरुनन्दन ! अपने पिता के समान ही परम उत्तम रूप और कान्ति धारण किये पवित्रात्मा शुकदेव धूमरहित अग्नि के समान देदीप्यमान हो रहे थे।11।
जनेश्वर ! उसी समय सरिताओं में श्रेष्ठ श्रीगंगाजी मूर्तिमती होकर मेरुपर्वत पर आयीं और उन्होंने अपने जल से शुकदेवजी को तृप्त किया।12।
कुरुनन्दन ! राजेन्द्र ! आकाश से महात्मा शुकदेव के लिये दण्ड और काला मृगचर्म- ये दोनों वस्तुएँ पृथ्वी पर गिरीं।13।
गन्धर्व गाने और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। देवताओं की दुंदुभियाँ बड़े जोर-जोर से बज उठीं। विश्वावसु, तुम्बुरु, नारद, हाहा और हूहू आदि गन्धर्व शुकदेवजी के जन्म की बधाई गाने लगे।14-15।
इन्द्र आदि सम्पूर्ण लोकपाल, देवता, देवर्षि और ब्रह्मर्षि भी वहाँ आये।16।
वायु ने सब प्रकार के दिव्य पुष्पों की वर्षा की। चर और अचर सारा संसार हर्ष से खिल उठा।17।
तब महातेजस्वी महात्मा भगवान् शंकर ने देवी पार्वती के साथ स्वयं प्रसन्नतापूर्वक पधारकर महर्षि व्यास के उस नवजात पुत्र का विधिपूर्वक उपनयन संस्कार किया।18।
प्रभो! उस समय देवेश्वर इन्द्र ने उन्हें प्रेमपूर्वक दिव्य एवं अद्भुत कमण्डलु तथा देवोचित वस्त्र प्रदान किये। 19।
भारत ! सहस्त्रों हंस, शतपत्र, सारस, शुक और नीलकण्ठ आदि पक्षी उनकी प्रदक्षिणा करने लगे।20।
तदनन्तर महातेजस्वी अरणिसम्भूत शुक वह दिव्य जन्म पाकर ब्रह्मचर्य की दीक्षा ले वहीं रहने लगे। वे बड़े बुद्धिमान्, व्रतपालक तथा चित्त को एकाग्र रखने वाले थे।21।
महाराज ! शुकदेवजी के जन्म लेते ही रहस्य और संग्रहसहित सम्पूर्ण वेद उसी प्रकार उनकी सेवा में उपस्थित हो गये, जैसे वे उनके पिता वेदव्यास की सेवा में उपस्थित हुए थे।22।

महाराज ! वेद-वेदांगों की विस्तृत व्याख्या के ज्ञाता शुकदेवजी ने धर्म का विचार करके बृहस्पतिको अपना गुरु बनाया ।23 ।

प्रभो! महामुनि शुकदेव ने उनसे रहस्य और संग्रहसहित सम्पूर्ण वेदों का, समूचे इतिहास का तथा राजशास्त्र का भी अध्ययन करके गुरु को दक्षिणा दे समावर्तन-संस्कार के पश्चात् घर को प्रस्थान किया ।24-25 ।

उन्होंने एकाग्रचित्त हो ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए उग्र तपस्या प्रारम्भ की । महातपस्वी शुकदेव ज्ञान और तपस्या के द्वारा बाल्यकाल में भी देवताओं तथा ऋषियों के आदरणीय और उन्हें सलाह देने योग्य हो गये थे । 26 ।

नरेश्वर ! वे मोक्षधर्म पर ही दृष्टि रखते थे; अतः उनकी बुद्धि गार्हस्थ्य आश्रम पर अवलम्बित रहने वाले तीनों आश्रमों में प्रसन्नता का अनुभव नहीं करती थी ।27 ।

(इस प्रकार श्रीमहाभारत शान्तिपर्व के अन्तर्गत मोक्षधर्मपर्व में शुकदेव की उत्पत्तिविषयक तीन सौ चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ।)

अध्याय 325: शुकदेवजी का मिथिला जाना

भीष्मजी कहते हैं - युधिष्ठिर ! शुकदेवजी मोक्ष का विचार करते हुए ही अपने पिता एवं गुरु व्यासजी के पास गये और विनीतभाव से उनके चरणों में प्रणाम करके कल्याण-प्राप्ति की इच्छा रखकर उनसे इस प्रकार बोले ।1 ।

'प्रभो! आप मोक्षधर्म में कुशल हैं; अतः मुझे ऐसा उपदेश कीजिये, जिससे मेरे चित्त को परम शान्ति मिले' ।2 ।

पुत्र की वह बात सुनकर महर्षि व्यास ने कहा, 'बेटा! तुम मोक्ष तथा अन्यान्य विविध धर्मों का अध्ययन करो' । 3 ।

भारत ! पिता की आज्ञा से धर्मात्माओं में श्रेष्ठ शुक ने सम्पूर्ण योगशास्त्र तथा समस्त सांख्य का अध्ययन किया ।4 ।

जब व्यासजी ने यह समझ लिया कि मेरा पुत्र ब्रह्मतेज से सम्पन्न और मोक्षधर्म में कुशल हो गया है तथा समस्त शास्त्रों में इसकी ब्रह्मा के समान गति हो गयी है, तब उन्होंने कहा - 'बेटा! अब तुम मिथिला के राजा जनक के पास जाओ । वे मिथिलानरेश तुम्हें सम्पूर्ण मोक्षशास्त्र का सार सिद्धान्त बता देंगे' ।5-6 ।

नरेश्वर ! पिता की आज्ञा पाकर शुकदेवजी धर्म की निष्ठा और मोक्ष का परम आश्रय पूछने के लिये मिथिला की ओर चल दिये ।7 ।

जाते समय व्यासजी ने फिर बिना किसी विस्मय के कहा- 'बेटा! जिस मार्ग से साधारण मनुष्य चलते हों, उसी से तुम भी जाना । अपनी योगशक्ति का आश्रय लेकर आकाशमार्ग से कदापि यात्रा न करना ।8 ।

'सरलभाव से ही यात्रा करनी चाहिये । रास्ते में सुख और सुविधा की खोज नहीं करनी चाहिये । विशेष-विशेष व्यक्तियों अथवा स्थानों का अनुसंधान न करना; क्योंकि इससे उनके प्रति आसक्ति हो जाती है ।9 ।

'राजा जनक मेरे यजमान हैं, ऐसा समझकर उनके प्रति अहंकार न प्रकट करना तथा सब प्रकार से उनकी आज्ञा के अधीन रहना । वे तुम्हारी सब शंकाओं का समाधान कर देंगे ।10 ।

'मेरे यजमान राजा जनक धर्मनिपुण तथा मोक्ष-शास्त्र में प्रवीण हैं । वे तुम्हें जो आज्ञा दें, उसी का निःशंक होकर पालन करना' ।11 ।

पिता के ऐसा कहने पर धर्मात्मा मुनि शुकदेवजी मिथिला की ओर चल दिये। यद्यपि वे आकाशमार्ग से सारी पृथ्वी को लाँघ जाने में समर्थ थे, तो भी पैदल ही चले ।12।

मार्ग में उन्हें अनेक पर्वत, नदी, तीर्थ और सरोवर पार करने पड़े। बहुत-से सर्पों और वन्य पशुओं से भरे हुए कितने ही जंगलों में होकर जाना पड़ा। उन सबको लाँघकर क्रमशः मेरु (इलावृत) वर्ष, हरिवर्ष और हैमवत (किम्पुरुष) वर्ष को पार करते हुए वे भारतवर्ष में आये ।13-14।

चीन और हूण जाति के लोगों से सेवित नाना प्रकार के देशों का दर्शन करते हुए महामुनि शुकदेवजी इस आर्यावर्त देश में आ पहुँचे ।15।

पिता की आज्ञा मानकर उसी ज्ञातव्य विषय का चिन्तन करते हुए उन्होंने सारा मार्ग पैदल ही तै किया। जैसे आकाशचारी पक्षी आकाश में विचरता है, उसी प्रकार वे भूतल पर विचरण करते थे ।16।

रास्ते में बड़े सुन्दर-सुन्दर शहर और कस्बे तथा समृद्धिशाली नगर दिखायी पड़े। भाँति-भाँति के विचित्र रत्न दृष्टिगोचर हुए; किंतु शुकदेवजी उनकी ओर देखते हुए भी नहीं देखते थे ।17।

पथिक शुकदेवजी ने बहुत-से मनोहर उद्यान तथा घर और मन्दिर देखकर उनकी उपेक्षा कर दी। कितने ही पवित्र रत्न उनके सामने पड़े, परंतु वे सबको लाँघकर आगे बढ़ गये ।18।

इस प्रकार यात्रा करते हुए वे थोड़े ही समय में धर्मराज महात्मा जनक द्वारा पालित विदेह प्रान्त में जा पहुँचे। 19।

वहाँ बहुत-से गाँव उनकी दृष्टि में आये, जहाँ अन्न, पानी तथा नाना प्रकार की खाद्य सामग्री प्रचुर मात्रा में मौजूद थी। छोटी-छोटी टोलियाँ तथा गोष्ठ (गौओं के रहने के स्थान) भी दृष्टिगोचर हुए, जो बड़े समृद्धिशाली और बहुसंख्यक गोसमुदायों से भरे हुए थे ।20।

सारे विदेहप्रान्त में सब ओर अगहनी धान की खेती लहलहा रही थी। वहाँ के निवासी धन-धान्य से सम्पन्न थे। उस देश में चारों ओर हंस और सारस निवास करते थे। कमलों से अलंकृत सैकड़ों सुन्दर सरोवर विदेह-राज्य की शोभा बढ़ा रहे थे ।21।

इस प्रकार समृद्धिशाली मनुष्यों द्वारा सेवित विदेह-देश को लाँघकर वे मिथिला के समृद्धिसम्पन्न रमणीय उपवन के पास जा पहुँचे ।22।

वह स्थान हाथी, घोड़े और रथों से भरा था। असंख्य नर-नारी वहाँ आते-जाते दिखायी देते थे। अपनी मर्यादा से कभी च्युत न होने वाले शुकदेवजी वह सब देखकर भी नहीं देखते हुए-से वहाँ से आगे बढ़ गये ।23।

मन से जिज्ञासा का भार वहन करते और उस ज्ञेय वस्तु का ही चिन्तन करते हुए आत्माराम प्रसन्नचित्त शुकदेव ने मिथिला में प्रवेश किया ।24।

नगरद्वार पर पहुँचकर वे निःशंकभाव से उसके भीतर प्रवेश करने लगे। तब वहाँ द्वारपालों ने कठोर वाणी द्वारा उन्हें डाँटकर भीतर जाने से रोक दिया ।25।

शुकदेवजी वहीं खड़े हो गये; किंतु उनके मन में किसी प्रकार का खेद या क्रोध नहीं हुआ। रास्ते की थकावट और सूर्य की धूप से उन्हें संताप नहीं पहुँचा था। भूख और प्यास उन्हें कष्ट नहीं दे सकी थी ।26।

वे उस धूप से न तो संतप्त होते थे, न ग्लानिका अनुभव करते थे और न धूप से हटकर छाया में ही जाते थे। उस समय उन द्वारपालों में से एक को अपने व्यवहार पर बड़ा दुःख हुआ ।27।

उसने मध्याह्नकालीन तेजस्वी सूर्य की भाँति शुकदेवजी को चुपचाप खड़ा देख हाथ जोड़कर प्रणाम किया और शास्त्रीय विधि के अनुसार उनकी यथोचित पूजा करके उन्हें राजभवन की दूसरी कक्षा में पहुँचा दिया ।28 ।

तात! वहाँ एक जगह बैठकर महातेजस्वी शुकदेवजी मोक्ष का ही चिन्तन करने लगे । धूप हो या छाया, दोनों में उनकी समान दृष्टि थी ।29 ।

थोड़ी ही देर में राजमन्त्री हाथ जोड़े हुए वहाँ पधारे और उन्हें अपने साथ महल की तीसरी डयोढ़ी में ले गये । 30 ।

वहाँ अन्तःपुर से सटा हुआ एक बहुत सुन्दर विशाल बगीचा था, जो चैत्ररथ वन के समान मनोहर जान पड़ता था । उसमें पृथक् पृथक् जल-क्रीड़ा के लिये अनेक सुन्दर जलाशय बने हुए थे । वह रमणीय उपवन खिले हुए वृक्षों से सुशोभित होता था । उस उत्तम उद्यान का नाम था प्रमदावन । मन्त्री ने शुकदेवजी को उसके भीतर पहुँचा दिया ।31-32 ।

वहाँ उनके लिये सुन्दर आसन बताकर राजमन्त्री पुनः प्रमदावन से बाहर निकल आये । मन्त्री के जाते ही पचास प्रमुख वारांगनाएँ शुकदेवजी के पास दौड़ी आयीं । उनकी वेश-भूषा बड़ी मनोहारिणी थी । वे सब-की-सब देखने में परम सुन्दरी और नवयुवती थीं । वे सुरम्य कटिप्रदेश से सुशोभित थीं । उनके सुन्दर अंगों पर लाल रंग की महीन साड़ियाँ शोभा पा रही थीं । तपाये हुए सुवर्ण के आभूषण उनका सौन्दर्य बढ़ा रहे थे । वे बातचीत करने में कुशल और नाचने-गाने की कला में बड़ी प्रवीण थीं । उनका रूप अप्सराओं के समान था, वे मन्द मुसकान के साथ बातें करतीं और दूसरों के मन का भाव समझ लेती थीं । कामचर्या में कुशल और सम्पूर्ण कलाओं का विशेष ज्ञान रखने वाली थीं ।33-35 ।

उन्होंने पाद्य, अर्घ्य आदि निवेदन करके उत्तम विधि से शुकदेवजी का पूजन किया और उन्हें समयानुकूल स्वादिष्ठ अन्न भोजन कराकर पूर्णतः तृप्त किया ।36 ।

तात! भरतनन्दन ! जब वे भोजन कर चुके, तब वे वारांगनाएँ उन्हें साथ लेकर अन्तःपुर के उस सुरम्य कानन - प्रमदावन की सैर कराने और वहाँ की एक-एक वस्तु को दिखाने लगीं ।37 ।

उस समय वे हँसती, गाती तथा नाना प्रकार की सुन्दर क्रीड़ाएँ करती थीं । मन के भाव को समझने वाली वे सुन्दरियाँ उन उदारचित्त शुकदेवजी की सब प्रकार से सेवा करने लगीं ।38 ।

परंतु अरणिसम्भव शुकदेवजी का अन्तःकरण पूर्णतः शुद्ध था । वे इन्द्रियों और क्रोध पर विजय पा चुके थे । उन्हें न तो किसी बात पर हर्ष होता था और न वे किसी पर क्रोध ही करते थे । उनके मन में किसी प्रकार का संदेह नहीं था और वे सदा अपने कर्तव्य का पालन किया करते थे ।39 ।

उन सुन्दरी रमणियों ने देवताओं के बैठने योग्य एक दिव्य पलंग, जिसमें रत्न जड़े हुए थे और जिस पर बहुमूल्य बिछौने बिछे थे, शुकदेवजी को सोने के लिये दिया ।40 ।

परंतु शुकदेवजी ने पहले हाथ-पैर धोकर संध्योपासना की । उसके बाद पवित्र आसन पर बैठकर वे मोक्षतत्त्व का ही विचार करने लगे । रात के पहले पहर में वे ध्यानस्थ होकर बैठे रहे । फिर रात्रि के मध्यभाग (दूसरे और तीसरे पहर) में प्रभावशाली शुक ने यथोचित निद्रा को स्वीकार किया ।41-42 ।

तदनन्तर जब दो घड़ी रात बाकी रह गयी, उस समय ब्रह्मवेला में वे पुनः उठ गये और शौच-स्नान करने के अनन्तर बुद्धिमान् शुकदेव फिर परमात्मा के ध्यान में ही निमग्न हो गये । उस समय भी वे सुन्दरी स्त्रियाँ उन्हें

घेरकर बैठी थीं ।43-44 ।

भरतनन्दन ! इस विधि से अपनी मर्यादा से च्युत न होने वाले व्यासनन्दन शुक ने दिन का शेष भाग और समूची रात उस राजभवन में रहकर व्यतीत की ।45 ।

(इस प्रकार श्रीमहाभारत शान्तिपर्व के अन्तर्गत मोक्षधर्मपर्व में शुक की उत्पत्तिविषयक तीन सौ पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ।)

अध्याय 326: राजा जनक और शुकदेव संवाद

भीष्मजी कहते हैं - भारत! तदनन्तर मन्त्रियोंसहित राजा जनक अन्तःपुर की सम्पूर्ण स्त्रियों और पुरोहित को आगे करके आसन तथा नाना प्रकार के रत्नों की भेंट लिये मस्तक पर अर्घ्यपात्र रखकर गुरुपुत्र शुकदेवजी के पास आये ।1-2 ।

उस समय जिसे पुरोहित ने ले रखा था, वह सर्वतोभद्र नामक बहुरत्नजटित आसन, जिस पर मूल्यवान् बिछौने बिछे हुए थे, उनके हाथ से अपने हाथ में लेकर राजा जनक ने गुरुपुत्र शुकदेव को समर्पित किया । वह आसन समृद्धि से सम्पन्न था ।3-4 ।

व्यासपुत्र शुकदेव जब उस आसन पर विराजमान हुए, तब राजा जनक ने शास्त्र के अनुसार उनका पूजन आरम्भ किया । पहले पाद्य और अर्घ्य आदि निवेदन करके राजा ने उन्हें एक गौ प्रदान की ।5 ।

द्विजश्रेष्ठ शुकदेवजी ने राजा जनक की ओर से प्राप्त हुई वह मन्त्रयुक्त सविधि पूजा स्वीकार की । पूजा ग्रहण करने के पश्चात् गोदान स्वीकार करके राजा को आदर देते हुए महातेजस्वी शुक ने उनका सदा बना रहने वाला कुशल-समाचार पूछा ।6-7 ।

राजेन्द्र ! सेवकोंसहित राजा के आरोग्य का समाचार भी उन्होंने पूछा । फिर उनकी आज्ञा ले राजा अपने अनुचरवर्ग के साथ वहाँ हाथ जोड़े हुए भूमि पर ही बैठ गये । राजा का हृदय तो उदार था ही, उनका कुल भी परम उदार था । उन पृथ्वीपति नरेश ने व्यासनन्दन शुक से उनके कुशल-मंगल की जिज्ञासा करके पूछा- 'ब्रह्मन् ! किस निमित्त से यहाँ आपका शुभागमन हुआ है?' ।8-9 ।

शुकदेवजी ने कहा- राजन् ! आपका कल्याण हो । मेरे पिताजी ने मुझसे कहा है कि मेरे यजमान लोकप्रसिद्ध विदेहराज जनक मोक्षधर्म के विशेषज्ञ हैं । यदि प्रवृत्ति या निवृत्ति-धर्म के विषय में तुम्हारे हृदय में कोई संदेह हो तो तुरंत ही उनके पास चले जाओ । वे तुम्हारी सारी शंकाओं का समाधान कर देंगे ।10-11 ।

धर्मात्माओं में श्रेष्ठ नरेश ! पिता की इस आज्ञा से ही मैं यहाँ आपके पास कुछ पूछने के लिये आया हूँ । आप मेरे प्रश्नों का यथावत् उत्तर दें ।12 ।

ब्राह्मण का कर्तव्य क्या है? । मोक्ष नामक पुरुषार्थ का क्या स्वरूप है? । उस मोक्ष को ज्ञान से अथवा तपस्या से किस साधन से प्राप्त किया जा सकता है? ।13 ।

जनक ने कहा-तात ! ब्राह्मण को जन्म से लेकर जो-जो कर्म करने चाहिये, उनको सुनिये-यज्ञोपवीत संस्कार हो जाने के बाद ब्राह्मण-बालक को वेदाध्ययन में तत्पर होना चाहिये ।14 ।

प्रभो! तपस्या, गुरु की सेवा तथा ब्रह्मचर्य का पालन - इन तीन कर्मों के साथ-साथ वेदाध्ययन का कार्य सम्पन्न करना चाहिये । हवनकर्म द्वारा देवताओं के और तर्पण द्वारा वह पितरों के ऋण से मुक्त होने का यत्न करे ।

किसी के दोष न देखे और संयमपूर्वक रहकर वेदाध्ययन समाप्त करने के पश्चात् गुरु को दक्षिणा दे और उनकी आज्ञा लेकर समावर्तन-संस्कार के पश्चात् घर को लौटे।15-16।

घर आने पर विवाह करके गार्हस्थ्य धर्म का पालन करे और अपनी ही स्त्री के प्रति अनुराग रखे। दूसरों के दोष न देखकर सबके साथ यथोचित बर्ताव करे और अग्नि की स्थापना के पश्चात् प्रतिदिन अग्निहोत्र करता रहे।17।

वहाँ पुत्र-पौत्र उत्पन्न करके पुत्र को गार्हस्थ्य धर्म का भार सौंपकर वन में जा वानप्रस्थ-आश्रम में रहे। उस समय भी शास्त्रविधि के अनुसार उन्हीं गार्हपत्य आदि अग्नियों की आराधना करते हुए अतिथियों का प्रेमपूर्वक सत्कार करे।18।

इसके बाद धर्मज्ञ पुरुष शास्त्रीय विधि के अनुसार अग्निहोत्र की अग्नियों का आत्मा में आरोप करके निर्द्वन्द्व एवं वीतराग होकर ब्रह्मचिन्तन से सम्बन्ध रखने वाले संन्यास-आश्रम में प्रवेश करे।19।

शुकदेवजी ने पूछा- राजन्! यदि किसी के हृदय में ब्रह्मचर्य-आश्रम में ही सनातन ज्ञान-विज्ञान प्रकट हो जाय और हृदय के राग-द्वेष आदि द्वन्द्व दूर हो जायँ तो भी क्या उसके लिये शेष तीन आश्रमों में रहना आवश्यक है?। 20।

नरेश्वर! मैं यही बात आपसे पूछता हूँ। आप मुझे यह बताने की कृपा करें। वेद के वास्तविक सिद्धान्त के अनुसार क्या करना उचित है?। यह आप मुझे बताइये।21।

जनक ने कहा- ब्रह्मन्! जैसे ज्ञान-विज्ञान के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, उसी प्रकार सद्गुरु से सम्बन्ध हुए बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती।22।

गुरु इस संसारसागर से पार उतारने वाले हैं और उनका दिया हुआ ज्ञान यहाँ नौका के समान बताया जाता है। मनुष्य उस ज्ञान को पाकर भवसागर से पार और कृतकृत्य हो जाता है। जैसे नदी को पार कर लेने पर मनुष्य नाव और नाविक दोनों को छोड़ देता है, उसी प्रकार मुक्त हुआ पुरुष गुरु और ज्ञान दोनों को छोड़ दे। 23।

पहले के विद्वान् लोकमर्यादा की तथा कर्मपरम्परा की रक्षा करने के लिये चारों आश्रमोंसहित वर्णधर्मों का पालन करते थे।24।

इस तरह क्रमशः नाना प्रकार के कर्मों का अनुष्ठान करते हुए शुभाशुभ कर्मों की आसक्ति का परित्याग करने से यहाँ मोक्ष की प्राप्ति होती है।25।

अनेक जन्मों से कर्म करते-करते जब सम्पूर्ण इन्द्रियाँ पवित्र हो जाती हैं, तब शुद्ध अन्तःकरण वाला मनुष्य पहले ही आश्रम में अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम में मोक्षरूप ज्ञान प्राप्त कर सकता है।26।

उसे पाकर जब ब्रह्मचर्य-आश्रम में ही तत्त्व का साक्षात्कार हो जाय तो परमात्मा को चाहने वाले जीवन्मुक्त विद्वान् के लिये शेष तीन आश्रमों में जाने की क्या आवश्यकता है? अर्थात् कोई आवश्यकता नहीं है।27।

विद्वान् को चाहिये कि वह राजस और तामस दोषों का सदा ही परित्याग कर दे और सात्त्विक मार्ग का आश्रय लेकर बुद्धि के द्वारा आत्मा का साक्षात्कार करे।28।

जो सम्पूर्ण भूतों में आत्मा को और आत्मा में सम्पूर्ण भूतों को देखता है, वह संसार में उसी तरह कहीं भी आसक्त नहीं होता जैसे जलचर पक्षी जल में रहकर भी उससे लिप्त नहीं होता।29।

वह तो घोंसले को छोड़कर उड़ जाने वाले पक्षी की भाँति इस देह से पृथक् हो निर्द्वन्द्व एवं शान्त होकर परलोक में अक्षयपद (मोक्ष) को प्राप्त हो जाता है ।30 ।

तात! इस विषय में पूर्वकाल में राजा ययाति के द्वारा गायी हुई गाथाएँ सुनिये, जिन्हें मोक्षशास्त्र के ज्ञाता द्विज सदा याद रखते हैं ।31 ।

अपने भीतर ही आत्मज्योति का प्रकाश है, अन्यत्र नहीं । वह ज्योति सम्पूर्ण प्राणियों के भीतर समानरूप से स्थित है । अपने चित्त को भलीभाँति एकाग्र करने वाला उसको स्वयं देख सकता है ।32 ।

जिससे दूसरा कोई प्राणी नहीं डरता, जो स्वयं दूसरे किसी प्राणी से भयभीत नहीं होता तथा जो न तो किसी वस्तु की इच्छा करता है और न किसी से द्वेष ही रखता है, वह तत्काल ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है ।33 ।

जब मनुष्य मन, वाणी तथा क्रिया के द्वारा किसी भी प्राणी के प्रति पापभाव नहीं करता अर्थात् समस्त प्राणियों में द्वेषरहित हो जाता है, उस समय वह ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है ।34 ।

जब मोह में डालने वाली ईर्ष्या, काम एवं मोह का त्याग करके साधक अपने मन को आत्मा में लगा देता है, उस समय वह ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है ।35 ।

जब यह साधक सुनने और देखने योग्य पदार्थों में तथा सम्पूर्ण प्राणियों में समान भाववाला हो जाता है एवं सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से रहित हो जाता है, उस समय वह ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है ।36 ।

जिस समय मनुष्य निन्दा और स्तुति को समान भाव से समझता है, सोना-लोहा, सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी, अर्थ-अनर्थ, प्रिय-अप्रिय तथा जीवन-मरण में भी उसकी समान दृष्टि हो जाती है, उस समय वह साक्षात् ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है ।37-38 ।

जैसे कछुआ अपने अंगों को फैलाकर फिर समेट लेता है, उसी प्रकार संन्यासी को मन के द्वारा इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना चाहिये ।39 ।

जैसे अन्धकार से आच्छादित हुआ घर दीपक के प्रकाश से देखा जाता है, उसी प्रकार अज्ञानान्धकार से आवृत हुए आत्मा का विशुद्ध बुद्धिरूपी दीपक के द्वारा साक्षात्कार किया जा सकता है ।40 ।

बुद्धिमानों में श्रेष्ठ शुकदेवजी ! उपर्युक्त सारी बातें मुझे आपके भीतर दिखायी देती हैं । इनके अतिरिक्त भी जो कुछ जानने योग्य तत्त्व है, उसे आप ठीक-ठीक जानते हैं ।41 ।

ब्रह्मर्षे ! मैं आपको अच्छी तरह जान गया । आप अपने पिताजी की कृपा और उन्हीं से मिली हुई शिक्षाद्वारा विषयों से परे हो चुके हैं ।42 ।

महामुने ! उन्हीं गुरुदेव की कृपा से मुझे भी यह दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ है, जिससे मैं आपकी स्थिति को ठीक-ठीक समझ गया हूँ ।43 ।

आपका विज्ञान, आपकी गति और आपका ऐश्वर्य- ये सभी अधिक हैं; परंतु आपको इस बात का पता नहीं है । 44 ।

बालस्वभाव के कारण, संशय से अथवा मोक्ष न मिलने के काल्पनिक भय से मनुष्य को विज्ञान प्राप्त हो जाने पर भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती ।45 ।

मेरे-जैसे लोगों द्वारा जिसका संशय नष्ट हो गया है, वह साधक विशुद्ध निश्चय के द्वारा हृदय की गाँठें खोलकर उस परमगति को प्राप्त कर लेता है ।46 ।

ब्रह्मन्! आपको ज्ञान प्राप्त हो चुका है। आपकी बुद्धि भी स्थिर है तथा आपमें विषयलोलुपता का भी सर्वथा अभाव हो गया है, परंतु विशुद्ध निश्चय के बिना कोई परमात्मभाव को नहीं प्राप्त होता है।47।

आप सुख-दुःख में कोई अन्तर नहीं समझते। आपके मन में लोभ नहीं है। आपको न तो नाच देखने की उत्कण्ठा होती है और न गीत सुनने की। किसी विषय के प्रति आपके मन में राग नहीं उत्पन्न होता है।48।

महाभाग ! न तो भाई-बन्धुओं में आपकी आसक्ति है, न भयदायक पदार्थों से आपको भय ही होता है। मैं देखता हूँ, आपके लिये मिट्टी के ढेले, पत्थर और सुवर्ण एक-से हैं।49।

मैं तथा दूसरे मनीषी पुरुष भी आपको अक्षय एवं अनामय परम मार्ग (मोक्ष) में स्थित मानते हैं।50।

ब्रह्मन् ! इस जगत् में ब्राह्मण होने का जो फल है और मोक्ष का जो स्वरूप है, उसी में आपकी स्थिति है। अब और क्या पूछना चाहते हैं? ।51।

(इस प्रकार श्रीमहाभारत शान्तिपर्व के अन्तर्गत मोक्षधर्मपर्व में शुकोत्पत्तिविषयक तीन सौ छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ।)

अध्याय 327: शुकदेवजी का लौटना और स्वाध्याय विधि

भीष्मजी कहते हैं- युधिष्ठिर ! राजा जनक की यह बात सुनकर विशुद्ध अन्तःकरण वाले शुकदेवजी एक दृढ़ निश्चय पर पहुँच गये और बुद्धि के द्वारा आत्मा में स्थित होकर स्वयं अपने आत्मस्वरूप का साक्षात्कार करके कृतार्थ हो गये। एवं आनन्दमग्न हो, बड़ी शान्ति का अनुभव करते हुए हिमालयपर्वत को लक्ष्य करके वायु के समान वेग से चुपचाप उत्तर दिशा की ओर चल दिये।1-2।

इसी समय देवर्षि नारद सिद्धों और चारणों से सेवित हिमालय पर्वत पर उसका दर्शन करने के लिये आये।3।

उस पर्वत पर सब ओर अप्सराएँ विचर रही थीं। चारों ओर विविध प्राणियों की शान्तिमयी ध्वनि से वहाँ का सारा प्रान्त व्याप्त हो रहा था। सहस्त्रों किन्नर, भ्रमर, मद्गु, विचित्र खंजरीट, चकोर, सैकड़ों मधुर वाणी से सुशोभित विचित्र वर्णवाले मयूर, राजहंसों के समुदाय तथा काले कोकिल वहाँ अपनी शान्त मधुर ध्वनि फैला रहे थे।4-6।

पक्षिराज गरुड़ उस पर्वत पर नित्य विराजमान होते हैं। चारों लोकपाल, देवता तथा ऋषिगण सम्पूर्ण जगत् के हित की कामना से वहाँ सदा आते रहते हैं।7।

वहीं महात्मा श्रीविष्णु (श्रीकृष्ण) ने पुत्र के लिये तप किया था। वहीं कुमार कार्तिकेय ने बाल्यावस्था में देवताओं पर आक्षेप किया था और त्रिलोकी का अपमान करके पृथ्वी में अपनी शक्ति गाड़ दी थी।8-9।

उस समय वहाँ स्कन्द ने सम्पूर्ण जगत् पर आक्षेप करते हुए यह बात कही थी-'जो कोई भी दूसरा पुरुष मुझसे अधिक बलवान् हो, जिसे ब्राह्मण अधिक प्रिय हों, जो दूसरा व्यक्ति मुझसे भी अधिक ब्राह्मणभक्त तथा तीनों लोकों में पराक्रमशाली हो, वह इस शक्ति को उखाड़ दे अथवा हिला दे' ।10-11।

उनकी यह तिरस्कारपूर्ण घोषणा सुनकर सब लोग व्यथित हो उठे और मन-ही-मन सोचने लगे, 'भला, कौन वीर इस शक्ति को उखाड़ सकता है?' उस समय भगवान् विष्णु ने देखा कि सम्पूर्ण देवताओं की इन्द्रियाँ और चित्त भय से व्याकुल हैं तथा असुर और राक्षसोंसहित सम्पूर्ण जगत् पर स्कन्दद्वारा आक्षेप किया गया है। यह देखकर वे सोचने लगे कि यहाँ क्या करना अच्छा होगा? ।12-13।

तब उस आक्षेप को सहन न करके विशुद्धात्मा भगवान् विष्णु ने अग्निकुमार स्कन्द की ओर देखा। फिर उन पुरुषोत्तम ने उस समय उस प्रज्वलित शक्ति को बायें हाथ से पकड़कर हिला दिया।14।

बलवान् भगवान् विष्णु के द्वारा उस शक्ति के कम्पित किये जाने पर पर्वत, वन और काननोंसहित सारी पृथ्वी काँप उठी।15।

यद्यपि प्रभावशाली भगवान् विष्णु उसे उखाड़ फेंकने में समर्थ थे तो भी उन्होंने कुमार स्कन्द का तिरस्कार नहीं होने दिया। उन्हें अपमान से बचा लिया।16।

उस शक्ति को हिलाकर भगवान् ने प्रह्लाद से कहा- 'देखो, कुमार में कितना बल है? यह कार्य दूसरा कोई नहीं कर सकेगा'।17।

भगवान् के इस कथन को सहन न कर सकने के कारण प्रह्लाद ने स्वयं ही उस शक्ति को उखाड़ फेंकने का दृढ़ निश्चय कर लिया और उस शक्ति को पकड़कर खींचा; परंतु वे उसे हिला भी न सके।18।

हिरण्यकशिपुकुमार प्रह्लाद बड़े जोर से चिग्घाड़कर मूर्च्छित एवं व्याकुल हो उस पर्वतशिखर की भूमि पर गिर पड़े।19।

तात ! उसी गिरिराज हिमालय के पार्श्वभाग में उत्तर दिशा की ओर जाकर भगवान् वृषध्वज शिव ने नित्य-निरन्तर दुर्धर्ष तपस्या की है।20।

भगवान् शंकर के उस आश्रम को प्रज्वलित अग्नि ने चारों ओर से घेर रक्खा है। उस पर्वतशिखर का नाम आदित्यगिरि है, जिस पर अजितात्मा पुरुष नहीं चढ़ सकते। यक्ष, राक्षस और दानवों के लिये वहाँ पहुँचना सर्वथा असम्भव है।21-22।

वह दस योजन विस्तृत शिखर आग की लपटों से घिरा हुआ है। शक्तिशाली भगवान् अग्निदेव वहाँ स्वयं विराजमान हैं।23।

परम बुद्धिमान् महादेवजी सहस्त्र दिव्य वर्षों तक वहाँ एक पैर से खड़े रहे और उनकी तपस्या के सम्पूर्ण विघ्नों का निवारण करते हुए अग्निदेव वहीं विराजमान थे। महान् व्रतधारी महादेवजी वहाँ देवताओं को संतप्त करते हुए महान् तप में प्रवृत्त थे।24।

उसी बुद्धिमान् गिरिराज हिमवान् की पूर्व दिशा का आश्रय लेकर पर्वत के एकान्त तटप्रान्त में महातपस्वी महाबुद्धिमान् पराशरनन्दन व्यास अपने शिष्य महाभाग सुमन्तु, महाबुद्धिमान् जैमिनि, तपस्वी पैल तथा वैशम्पायन-इन चार शिष्यों को वेद पढ़ा रहे थे।25-27।

जहाँ महातपस्वी व्यास अपने शिष्यों से घिरे हुए बैठे थे, वहाँ शुकदेवजी ने अपने पिता के उस रमणीय एवं उत्तम आश्रम को देखा।28।

उस समय विशुद्ध अन्तःकरण वाले अरणीनन्दन शुकदेव आकाश में स्थित सूर्य के समान प्रकाशित हो रहे थे, इतने ही में व्यासजी ने भी प्रज्वलित अग्नि तथा सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र को सब ओर अपनी प्रभा बिखेरते हुए आते देखा।29।

योगयुक्त महात्मा शुकदेव धनुष की डोरी से छूटे हुए बाण के समान तीव्र गति से आ रहे थे। वे वृक्षों और पर्वतों में कहीं भी अटक नहीं पाते थे।30।

निकट आकर अरणीपुत्र महामुनि शुकदेव ने पिता के दोनों पैर पकड़ लिये और शान्तभाव से उनके अन्य सब शिष्यों के साथ भी मिले ।31 ।

तदनन्तर प्रसन्नचित्त हुए शुक ने राजा जनक के साथ जो वार्तालाप हुआ था, वह सारा-का-सारा वृत्तान्त अपने पिता से कह सुनाया ।32 ।

इस प्रकार शक्तिशाली महामुनि पराशरनन्दन व्यास अपने शिष्यों और पुत्र को पढ़ाते हुए हिमालय के शिखर पर ही रहने लगे ।33 ।

तदनन्तर किसी समय वेदाध्ययन से सम्पन्न, शान्तचित्त, जितेन्द्रिय, सांगवेद में पारंगत और तपस्वी शिष्यगण गुरुवर व्यासजी को चारों ओर से घेरकर बैठ गये और उनसे हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले ।34-35 ।

शिष्यों ने कहा- गुरुदेव ! हम आपकी कृपा से महान् तेजस्वी हो गये हैं । हमारा यश भी चारों ओर बढ़ गया है । अब इस समय हम यह चाहते हैं कि आप एक बार और हमलोगों पर अनुग्रह करें ।36 ।

शिष्यों की यह बात सुनकर ब्रह्मर्षि व्यास ने उनसे कहा- 'बच्चो ! कहो, क्या चाहते हो? मुझे तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करना है?' ।37 ।

गुरुदेव का यह वचन सुनकर उन शिष्यों का हृदय हर्ष से खिल उठा । राजन् ! वे पुनः हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर गुरुजी को प्रणाम करके एक साथ यह उत्तम वचन बोले- 'मुनिश्रेष्ठ ! आप हमारे उपाध्याय हैं । यदि आप प्रसन्न हैं तो हम धन्य हो गये ।38-39 ।

'हम सब लोग यह चाहते हैं कि महर्षि एक वरदान दें, वह यह कि आपका कोई छठा शिष्य प्रसिद्ध न हो । यहाँ हमलोगों पर इतनी ही कृपा कीजिये ।40 ।

'हम चार आपके शिष्य हैं और पंचम शिष्य गुरुपुत्र शुकदेव हैं । इन पाँचों में ही आपके पढ़ाए हुए सम्पूर्ण वेद प्रतिष्ठित हों; यही हमारे लिये मनोवाञ्छित वर है' ।41 ।

शिष्यों की यह बात सुनकर वेदार्थ के तत्त्वज्ञ, पारलौकिक अर्थ का चिन्तन करने वाले, धर्मात्मा, पराशरनन्दन बुद्धिमान् व्यासजी ने अपने समस्त शिष्यों से यह धर्मानुकूल कल्याणकारी वचन कहा- ।42 ।

'शिष्यगण ! जो ब्रह्मलोक में अटल निवास चाहता हो, उसका कर्तव्य है कि वह पढ़ने की इच्छा से आये हुए ब्राह्मण को सदा ही वेद पढ़ावे ।43 ।

'तुमलोग बहुसंख्यक हो जाओ और इस वेद का विस्तार करो । जिसका मन वश में न हो, जो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन न करता हो तथा जो शिष्यभाव से पढ़ने न आया हो, उसे वेदाध्ययन नहीं कराना चाहिये ।44 ।

'ये सभी शिष्य के गुण हैं । किसी को शिष्य बनाने से पहले उसके इन गुणों को यथार्थरूप से परख लेना चाहिये । जिसके सदाचार की परीक्षा न ली गयी हो, उसे किसी प्रकार विद्यादान नहीं देना चाहिये ।45 ।

'जैसे आग में तपाने, काटने और कसौटी पर कसने से शुद्ध सोने की परख की जाती है, उसी प्रकार कुल और गुण आदि के द्वारा शिष्यों की परीक्षा करनी चाहिये ।46 ।

'तुमलोग अपने शिष्यों को किसी अनुचित या महान् भयदायक कार्य में न लगाना । तुम्हारे पढ़ाने पर भी जिसकी जैसी बुद्धि होगी और जो पढ़ने में जैसा परिश्रम करेगा, उसी के अनुसार उसकी विद्या सफल होगी । सब लोग दुर्गम संकट से पार हों और सभी अपना कल्याण देखें ।47-48 ।